समाज विकासमाला

पंढरपुर

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
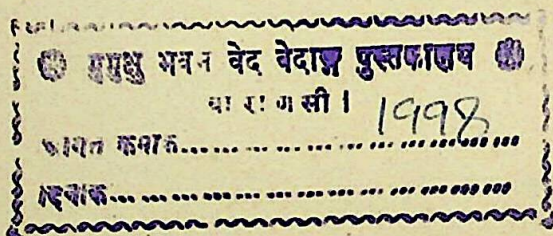
मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

दूसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पस्तक का दूसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटाएंगे।

—मंत्री

पाठकों से

इस माला में आप बदरीनाथ और द्वारका की तीर्थ-यात्रा कर चुके हैं। इस पुस्तक में हम आपको महाराष्ट्र के एक बहुत बड़े तीर्थ—पंढरपुर—की यात्रा करावेंगे। इस तीर्थ की सारे देश में मानता है और हर साल हजारों यात्री वहां जाते हैं।

यात्रा का बड़ा महत्व होता है। नए स्थान देखने को मिलते हैं और तरह-तरह के लोगों से मिलना-जुलना होता है। उस सबसे दिल बड़ा होता है। यह भी मालूम होता है कि हमारा देश कितना विशाल 'है कितना महान है।

इनसब पुस्तकों को आप अच्छी तरह से पढ़ें और दूसरों को भी पढ़वायें।

—संपादक

पंढरपुर

: १ :

अगर हमें यह देखना हो कि हमारे देश में जात-पांत, रहन-सहन, बोल-चाल आदि के भेद होते हुए भी हम कैसे एकता में गुंथे हुए हैं तो हम अपने तीर्थों पर निगाह डालें। वहां जात-पांत, भाषा-बोली आदि भेद टिक नहीं सकते और किसी भी तीर्थ पर जाकर हम देख सकते हैं कि हम सब भारतीय एक हैं।

महाराष्ट्र का पंढरपुर भी इसी तरह का एक तीर्थ है। वहांपर महाराष्ट्र के ब्राह्मणों से लेकर अछूतों तक सभी एक साल में कम-से-कम दो बार जमा हो जाते हैं, लेकिन साथ ही कर्नाटक और आंध्र के भी हजारों स्त्री-पुरुष हर साल पंढरपुर के विठ्ठल के दर्शनों के लिए आते हैं। जिस तरह मराठी में ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, चोखामेला आदि सवर्ण तथा अछूत संतों ने विठोबा की स्तुति में पद लिखे हैं, उसी तरह चौंडरस, पुरंदरदास, कनकदास आदि कर्नाटक के संतों ने भी कन्नड़ भाषा में विठ्ठल के गुण गाये हैं। जब लोग

काशी, रामेश्वर, द्वारका, जगन्नाथपुरी आदि बड़े तीर्थों की यात्रा नहीं कर सकते तो अपने पास के तीर्थ की यात्रा करते हैं और इस तरह सब तीर्थों को बड़े तीर्थों का महत्व मिल जाता है। यही हाल पंढरपुर का है।

पंढरपुर जाने के दो रास्ते हैं। एक उत्तर से, दूसरा दक्षिण से। उत्तर में पूना-शोलापुर के रास्ते पर पूना से ११५ मील पर और शोलापुर से ४६ मील पर कुर्डूवाडी नाम का मध्य रेलवे का जंक्शन है। वहां से बार्शीलाइट रेलवे नाम की छोटी लाइन पर ३३ मील की दूरी पर पंढरपुर स्टेशन है। दक्षिण में दक्षिण रेलवे के मिरज जंक्शन से पंढरपुर ८५ मील पड़ता है। वहां से भी बार्शीलाइट रेलवे की छोटी लाइन पंढरपुर होती हुई लातुर तक जाती है। यह लाइन बहुत ही छोटी है, इसलिए बड़े-बड़े मेलों के मौकों पर इसमें माल ढोनेवाले डिब्बे लगा दिये जाते हैं और उनमें आदमियों को सफर करना पड़ता है।

यात्रियों के ठहरने आदि का बहुत अच्छा प्रबंध यहांपर है। अनेक मंदिर, मठ और धर्मशालाएं हैं। पंडों का काम करनेवाले कई ब्राह्मण-परिवार हैं, जिन्हें बडवे, उत्पात, हरदास, पुजारी आदि नामों से पुकारा

जाता है।

यहांपर भीमा नदी चांद के आकार में बहती है, इसलिए उसे चंद्रभागा कहा जाता है। पंढरपुर इसी चंद्रभागा के किनारे बसा हुआ है। दूर से इसका दृश्य बड़ा ही सुंदर दिखाई देता है। यहां की जमीन बड़ी ही उपजाऊ है और जिस साल अच्छी बारिश होती है, उस साल ज्वार या बाजरे की बड़ी अच्छी फसल होती है। यहां के बैल मशहूर हैं।

काशी की तरह पंढरपुर की आबादी भी बहुत घनी है और बड़ी संकरी गलियों का जाल सब तरफ बिछा हुआ है। इसलिए बरसात के दिनों में यानी आषाढ़ की एकादशी के मौक़े पर लोगों को बड़ी तक-लीफ होती है, लेकिन कार्तिकी एकादशी को यहां की नदी के पाट में खाली जगह काफी हो जाती है।

महाराष्ट्र का हर निवासी, भले ही काशी की यात्रा न करे, रामेश्वर तक न भी पहुंच पाये, मगर पंढरपुर जरूर जाता है। कम-से-कम ऐसी कोशिश बराबर करता रहता है कि जीवन में एक बार तो पंढरपुर के विठोबा के दर्शन कर ले। हजारों लोग पैदल भी यात्रा करते हैं और श्री विठ्ठल के दर्शन करके अपनेको धन्य मानते हैं। लड़ाई के मैदान में बहादुरी दिखानेवाले जंगजू

मराठों को पंढरपुर में श्री विठ्ठल के भजन में मस्त देखकर किसीको भी यह शक हो सकता है कि क्या यही वे जवांमर्द लोग हैं ? लेकिन यह परंपरा सैकड़ों बरसों से चली आई है और न मालूम आगे भी कितनी सदियों तक चलती रहेगी। आइए, इस तीर्थ के हमारे साथ आप भी दर्शन कर लीजिए।

: २ :

श्री विठ्ठल का मंदिर शहर के बीच में है और चारों तरफ से छोटे-छोटे मकानों से घिरा हुआ है। इस ३५० फ़ुट लंबे और १७० फुट चौड़े मंदिर में चारों ओर मिलाकर आठ दरवाज़े हैं। ज्यादातर लोग पूरब की तरफ के दरवाजों से आते-जाते हैं, इसलिए उसे 'महाद्वार' कहते हैं।

लेकिन मंदिर में सीधे नहीं चले जाते। पहले चंद्र-भागा नदी में स्नान करना पड़ता है। यह नदी बहुत ही छोटी और उथली है। इसके किनारे ग्यारह घाट बने हुए हैं, पर इन घाटों से वह बहुत दूर चली गई है। इसलिए इसका बड़ा रेतीला पाट बरसात के दिनों को छोड़कर हमेशा खुला रहता है। इस मैदान में भी लोग डेरे डाले रहते हैं।

स्नान करने के बाद भी तुरंत श्री विठ्ठल के दर्शन नहीं करने होते। उससे पहले श्री पुंडलीक का दर्शन करना होता है। यह मंदिर बिल्कुल पास यानी
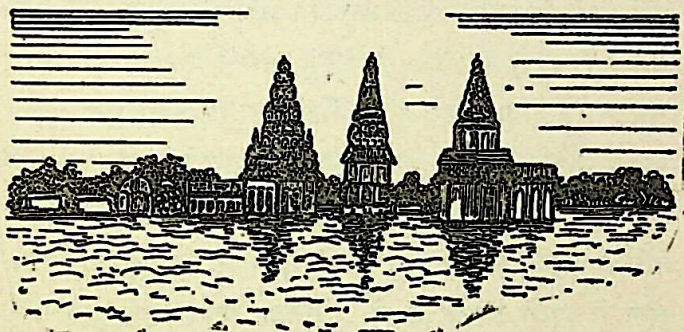
पुंडलीक की समाधि

नदी में ही है। सबसे ऊंचा शिखरवाला मंदिर भी पुंडलीक का है। उसके माता-पिता के समाधि-मंदिर भी वहीं हैं। मंदिर में एक शिवलिंग है, उसपर लगाये गए एक चेहरे की सूरत में ही पुंडलीक दर्शन देता है।

इस पुंडलीक की कहानी बड़ी मजेदार और सीख देनेवाली है। पुंडलीक पहले बहुत बुरा था। स्त्री के चक्कर में अपने मां-बाप को बहुत सताता था। एक बार वह काशी-यात्रा के लिए निकला तो उसने अपनी स्त्री को तो कंधे पर बिठा लिया, पर बूढ़े मां-बाप को जानवरों की तरह रस्सी से बांधकर घसीटता हुआ ले चला।

बाद में कुक्कुट मुनि के आश्रम में गंगा, जमुना, सरस्वती के उपदेश से उसको होश आया और उसने अपने माता-पिता की सेवा करनी शुरू की।

उसकी इस सेवा से भगवान श्रीकृष्ण बहुत ही प्रसन्न हुए और उसे वर देने के लिए उसके पास गए। उस समय पुंडलीक अपने माता-पिता के पैर दबा रहा था। भगवान को देखकर अपने हाथ का काम बंद करने के बजाय उसने पास पड़ी हुई ईंट उनकी तरफ फेंकी और कहा, "भगवन्, मैं अभी सेवा में लगा हूं। जब-तक मैं इससे निपट न लूं तबतक आप इस ईंट पर खड़े रहिए।"

भगवान वहीं खड़े-खड़े अपने भक्त की सेवा देखते रहे। जब पुंडलीक के माता-पिता सो गए तो वह भगवान के पास गया और पूछा, "महाराज, आपने यहांतक आने का कष्ट कैसे किया ?"

मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूं और तुम्हें वर देने के लिए यहां आया हूं।" भगवान ने जवाब दिया।

"वर ! मुझे किसी वर की जरूरत नहीं है।" पुंडलीक ने कहा।

"फिर भी मैं तुमको कुछ-न-कुछ देना ही चाहता

हूं।" भगवान बोले।

"अगर आप वर देना ही चाहते हैं तो इतना कीजिए कि दुनिया के अंत तक आप यहीं इस ईंट पर खड़े रहिए, ताकि मेरी तरह दूसरे लोगों को भी आसानी से आपके दर्शन मिल सकें।" भक्त ने वर मांगा।

और तब से भगवान श्रीकृष्ण वहांपर खड़े हैं। लोग समझते हैं कि अट्ठाईस युगों से भगवान वहां हैं, मगर इतिहासकार कहते हैं कि ईसा की बारहवीं सदी में पुंडलीक यहां था और उसका यह मंदिर संत चांगदेव ने बनाया था।

भगवान की आज्ञा है कि उनके भक्त का दर्शन लोगों को पहले करना चाहिए। पुंडलीक की महिमा सभी संतों ने गाई है। संत तुकाराम प्यारभरे गुस्से से कहते हैं:

"कां रे पुंडया मातलासी ?
उभें केलें विठ्ठलासो ॥"

—अरे पुंडलीक, तू इतना उन्मत्त क्यों हुआ है कि तूने हमारे विठ्ठल को खड़ा ही कर रक्खा है ?

महाराष्ट्र के संत विठ्ठल-रखुमाई को माता-पिता, पुंडलीक को भाई और चंद्रभागा को बहन मानते हैं, मानों सारे संतों का यह मायका है और जिस तरह
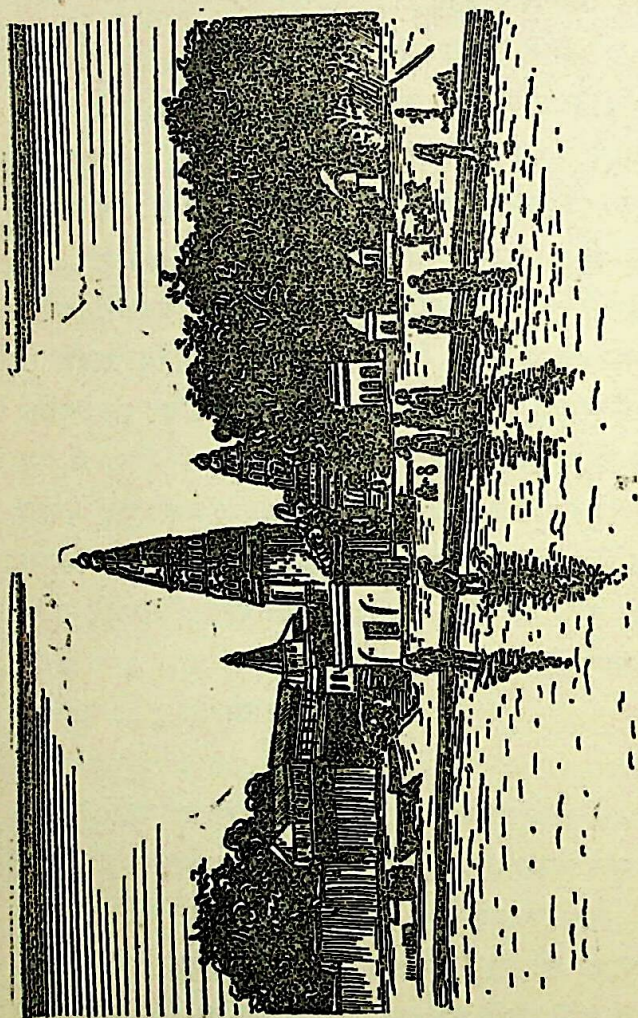
चंद्रभागा का एक दृश्य

कोई स्त्री अपने ससुराल के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए कुछ दिन पीहर चली जाती है उसी तरह ईश्वर के भक्त संसार के जंजाल से थोड़ी देर के लिए छुटकारा पाने की इच्छा से पंढरपुर चले जाते हैं।

महाद्वार से मंदिर में प्रवेश करते समय बड़ी सावधानी रखनी होती है; क्योंकि पहली सीढ़ी के नीचे संत नामदेव की समाधि है। उसपर पैर नहीं पड़ना चाहिए। इस सीढ़ी को 'नामदेव की सीढ़ी' कहते हैं।

इस सीढ़ी की कहानी भी अपनी विशेषता रखती है। संत नामदेव विठ्ठल भगवान के बड़े भक्त थे। उन्होंने सोचा कि इस मंदिर की सीढ़ी के नीचे ही हम समाधि ले लें तो मंदिर में प्रवेश करनेवाले हर भक्त के चरण उस सीढ़ी को स्पर्श करेंगे और इस तरह उनके पैरों की धूल हमेशा हमारे सिर पर पड़ती रहेगी और हम पावन होते रहेंगे। लेकिन भक्तों को यह कैसे अच्छा लगता कि एक महान संत के सिर पर पांव रखकर आगे बढ़े? इसलिए लोगों ने उस सीढ़ी को पीतल की चद्दर से मढ़ दिया। अब जो भी वहां जाता है उस सीढ़ी पर पैर रखने के बजाय हाथों से उसे छूकर उसकी धूल माथे पर लगाता है और उसे लांघकर दूसरी सीढ़ी पर कदम रखता है। इस सीढ़ी

की दाहिनी तरफ नामदेव का पीतल का चेहरा रखा रहता है। उसपर मराठी ढंग की पोशाक चढ़ाकर फूल-मालाएं पहनाई जाती हैं और तिलक लगाया जाता है।

यहां से नजदीक ही सामने की तरफ हरिजन संत चोखामेला की समाधि है। एक गढ़े में एक खड़ा पत्थर है और उसपर छत्र रहता है। यही वह समाधि है।

सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाने पर हम मुक्तिमंडप या मुखमंडप में प्रवेश करते हैं। उसके पास ही एक लकड़ी का सभामंडप है। यहां गरुड़ और हनुमान की मूर्तियां हैं। गरुड़ की दाहिनी तरफ एक और महा भयंकर हनुमानजी हैं। कहते हैं कि इस मूर्ति की स्थापना समर्थ रामदास स्वामी ने की थी।

समर्थ रामदास एक बार पंढरपुर गए थे। संत तुलसीदास की तरह रामदास भी हर जगह श्रीरामचंद्र को ही देखते थे। इसलिए श्री विठ्ठल के दर्शन करने पर 'वासुदेव हरि' का नारा लगाने के बदले उन्होंने अपनी आदत के अनुसार 'जय जय रघुवीर समर्थ' कहा। उसे सुनकर वहां के पंडे नाराज होगये और उन्होंने गुस्से से रामदास को घेर लिया। तब रामदास ने यह भजन गाया :

"येथें कां रे उभा श्रीरामा ।
मनमोहन मेघःश्यामा !"

—हे मनमोहन, मेघःश्याम श्रीराम, तुम यहां क्यों खड़े हो ? अयोध्या नगरी को छोड़कर तुम यहां क्यों आये ? धनुष-बाण छोड़कर इस तरह कमर पर हाथ रखकर क्यों खड़े हो ?

उनकी यह प्रार्थना सुनकर विठोबा ने श्रीराम का रूप धारण किया और मंदिर में ही अयोध्या का दृश्य उपस्थित कर दिया।

यह देखकर पंडे-पुजारियों ने समर्थ रामदास के पैर पकड़ लिये। इसी समय समर्थ रामदास ने ऊपर बताए हनुमान की स्थापना की।

इस सभामंडप के फर्श पर लोगों ने अपने नाम खोद दिये हैं। इसका कारण यह है कि देवदर्शन के लिए आनेवाले भक्तों की चरण-धूलि अपने नामों पर पड़ने से स्वर्ग-प्राप्ति या मोक्ष-प्राप्ति होगी, ऐसी उनकी धारणा थी और अब भी है।

आगे जाने पर सोलह खंभोंवाला मंडप दिखाई देता है। इसमें से एक खंभे पर बंदूक पकड़े हुए एक आदमी का चित्र है, जिससे मालूम होता है कि यह मंडप मुसलमानों के जमाने में बनाया गया होगा।

यहांपर एक खंभा सोने और रूपे की चद्दरों से मढ़ा हुआ है। इसे 'गरुड़-खंभा' कहते हैं। इसे गले लगाकर आगे बढ़ना होता है।

यहां से रूपे के दरवाजे में से अंदर जाने पर चार खंभों का मंडप आता है। पहले जमाने में यह दरवाजा रूपे के पत्तर से मढ़ा हुआ था, इसलिए उसे यह नाम दिया गया है। इस समय उसपर बहुत कम रूपा बचा है।

इस चार खम्भोंवाले मंडप में घुसते ही दाहिनी तरफ दीवार में बनाया हुआ श्री विठ्ठल का सोने का कमरा है। वहांपर रूपे का पलंग है और बड़ी कीमती गद्दियां, तकिये आदि सामान है। रात को सोने के समय की आरती के समय वह अलमारीनुमा कमरा खुला रहता है, वरना सारा दिन बंद रहता है।

मंदिर के मुख्य हिस्से को गर्भागार कहते हैं। यहींपर श्री विठ्ठल की काले पत्थर की खड़ी मूर्ति है। उसके सामने एक मोटी लकड़ी आड़ी गाड़ी गई है, जिसपर पीतल की चद्दर मढ़ी हुई है। इस लकड़ी के कारण दर्शन करनेवालों की भीड़ सीधे भगवान की मूर्ति पर जाकर नहीं टकराती। लोगों को एक तरफ से कतार बनाकर मूर्ति तक पहुंचना होता है। यह

मूर्ति एक चबूतरे पर खड़ी है, जिसकी ऊंचाई साढ़े तीन फुट है।

सन् १८७३ ईसवी तक लोग भगवान के पैरों का अपनी भुजाओं से आलिंगन करते थे। लेकिन उस साल कोई बैरागी वहां आया। उसने विठ्ठल के पैरों पर पत्थर दे मारा। इसलिए वह पैर जख्मी होगया और उसके लिए पीछे से सहारा देना जरूरी हो गया। अतः अब लोग सिर्फ मूर्ति के चरणों पर माथा ही टेक सकते हैं।
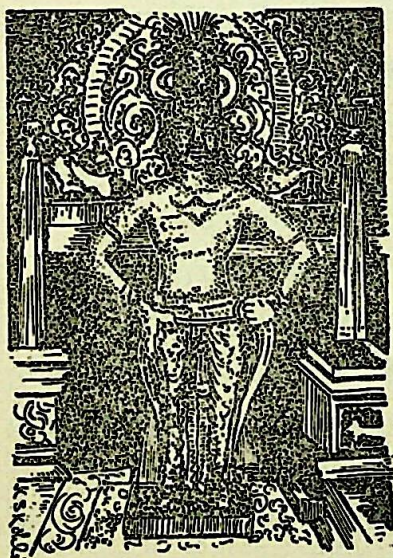
श्री विठ्ठल की मूर्ति

श्री विठ्ठल शब्द विष्णु (विष्णु-विठु-वेठ) शब्द से बना है, यानी वह विष्णु या कृष्ण का ही अवतार माना जाता है। पंढरपुर की मूर्ति की विशेषता यह है कि उसमें भगवान ने अपने दोनों हाथ कमर पर

रखे हैं। उनके दाहिने हाथ में शंख है और बायें में कमलनाल यानी कमल के फूल की डंडी है। सिरपर पारसी ढंग की टोपी या मुकुट है, जिसे कुछ लोग महादेव का लिंग भी कहते हैं। मूर्ति का चेहरा टोपी की तरह ही कुछ लंबोतरा है। कानों में तरह-तरह के गहने हैं। भुजाओं और कलाइयों में बाजूबंद (अंगद) और मणिबंध हैं। शरीर पर वस्त्र साफ दिखाई नहीं देता। पैरों के नीचे उलटा कमल-फूल है।

इस मूर्ति के आकार-प्रकार से ऐसा लगता है कि वह पिछले पांचसौ बरस पहले की होगी। मगर महाराष्ट्र-कर्नाटक में उससे भी हजार बरस पहले से विठ्ठल की भक्ति चली आई थी। इसका मतलब यह हुआ कि इससे पहले की मूर्तियां या तो मुसलमानों द्वारा तोड़ी गई हों या फिर इधर-उधर चली गई हों। इस बात का भी सबूत मिलता है कि ईसा की सोलहवीं सदी में विजयनगर के राजा श्री कृष्णदेव राय यहां से श्री विठ्ठल की मूर्ति अपने यहां ले गये थे। उसे शायद वापस भी लाया गया हो, पर इसका कोई सबूत नहीं मिलता।

कुछ लोगों ने यह साबित करने की भी कोशिश की है कि श्री विठ्ठल की मूर्ति जैनों या बौद्धों की है, मगर उसमें कोई सचाई नहीं पाई जाती।

बंगाल के नामी वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु या गौरांग महाप्रभु सन् १५१०-११ ईसवी के आसपास दक्षिण के तीर्थों की यात्रा करने आये थे। उनकी यात्रा का वर्णन कृष्णदास कविराज नाम के भक्त कवि ने (सन् १५१७-१६१७ ई०) अपने 'चैतन्य चरितामृत' ग्रंथ में किया है। चैतन्य महाप्रभु के कोल्हापुर से पंढरपुर जाने के बाद क्या हुआ, इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है :

तथा हइते पांडुपुर आइला गौरचंद्र।
विठ्ठल ठाकुर देखि पाइल आनंद॥
प्रेमावेशे कैल प्रभु नर्तन-कीर्तन।
प्रभुप्रेमे देखि सबार चमत्कार मन॥
(मध्यलीला, ९वां परिच्छेद)

—वहां से गौरांगप्रभु पांडुपुर यानी पंढरपुर आ गये। वहां विठ्ठलठाकुर को देखकर उनको आनंद हुआ। प्रेमावेश में प्रभु ने नर्तन और कीर्तन किया। वह प्रभु-प्रेम देखकर सबको आश्चर्य हुआ।

श्रीविठ्ठल के कई नाम हैं। उनमें से विठोबा, विठु, पांडुरंग, पंढरिनाथ आदि महाराष्ट्र में विशेष प्रचलित हैं। श्री विठ्ठल के भक्त और साधु-संत तो उनको 'विठाई माउली' यानी 'मां' कहकर पुकारते हैं।

सुबह से रात तक विठोबा की कई तरह की

पूजाएं की जाती हैं। लगभग पांच बजे, सूरज निकलने से बहुत पहले, भगवान की 'काकड आरती' की जाती है। उस वक्त उपाध्याय।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद।
उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज ॥
उत्तिष्ठ कमलाकांत।
त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥

—हे गोविंद उठिये। हे गरुड़ध्वज, उठिये और तीनों लोकों (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) को मंगल बनाइये—इस तरह कहकर भगवान को जगाते हैं। उनके पैर धोकर चंदन लगाते हैं, मालाएं पहनाते हैं, धूप-दीप नैवेद्य दिखाते हैं (भोग चढ़ाते हैं) और 'कांकडा' यानी छोटे पलीते से आरती उतारते हैं। इसलिए इसे 'काकडा आरती' कहते हैं। अंत में मंत्रपुष्प की विधि होती है, जिसमें जोर-जोर से मंत्र बोलकर फूल चढ़ाये जाते हैं।

इसके बाद पंचामृत-पूजा होती है। यह कई तरह से देखने योग्य होती है। एक तो यह कि इसी समय श्री विठ्ठल महाराज की असली या खुली मूर्ति के अच्छी तरह दर्शन होते हैं। इसके बाद उनको कपड़े पहनाये जाते हैं, इसलिए मूर्ति के असली रूप में दर्शन करने

हों तो यही समय ठीक होता है।

इस पूजा से पहले भगवान की बासी मालाएं और कपड़े उतारे जाते हैं। फिर दूध, दही, घी, शक्कर और शहद के पंचामृत से नहलाया जाता है। उसके बाद गर्म पानी से स्नान कराया जाता है और कपड़े पहनाकर भगवान को आइना दिखाया जाता है।

दोपहर की पूजा को मध्याह्न-पूजा' कहते हैं, जिसमें नैवेद्य दिखाना या भोग चढ़ाना ही खास बात होती है।

तीसरे पहर 'अपराह्न-पूजा' होती है, जिसमें भगवान के पैर धोकर उनके कपड़े बदले जाते हैं। इस समय श्रीविठ्ठल की खुली मूर्ति देखने को मिलती है, लेकिन बहुत थोड़ी देर के लिए।

शाम को 'धूपारती' होती है। इस समय भगवान के पांव पखारकर उनके माथे पर चंदन का आड़ा तिलक लगाया जाता है और गले में बड़ी-बड़ी मालाएं पहनाई जाती हैं। इस पूजा में पहले धूप से आरती उतारते हैं और बाद में दीपक से, इसलिए इसे 'धूपारती' कहते हैं।

यहांपर भोग चढ़ाते समय भगवान के सामने एक परदा लटकाया जाता है, ताकि लोग भगवान को भोग

ग्रहण करते हुए न देख सकें ।

रात को जो आरती होती है, उसे 'शेजारती' यानी सोने की आरती कहते हैं । इसके बाद भगवान सो जाते हैं ।

भगवान श्रीविठ्ठल को हर बुधवार तथा शनिवार और रखुमाई को हर मंगलवार और शुक्रवार को अभ्यंगस्नान कराया जाता है, यानी तेल वगैरह लगाकर नहलाया जाता है । एकादशी के दिन हर रोज की तरह भगवान सोने के लिए नहीं जाते । उस रात उनके सामने भजन-कीर्तन चलता रहता है । उस दिन भोग में भी हर रोज की चीजें नहीं, बल्कि उपवास में चलनेवाली चीजें रहती हैं । धन-संक्रांति से लेकर मकर-संक्रांति तक भगवान को गर्म खिचड़ी का नैवेद्य होता है और कपड़े पहनाते समय कान पर पट्टी बांधते हैं । माघ सुदी पंचमी से रंगपंचमी तक मूर्ति के पैरों पर गुलाल डाला जाता है और सिर पर साफा बांधते हैं । गर्मियों में तीसरे पहर भगवान को ठंडा जल, नाश्ता और पान दिया जाता है । गोकुल-अष्टमी के नौ दिन तक यहां बड़ा उत्सव रहता है, जिसमें कथा-कीर्तन और ब्राह्मण-भोज का विशेष कार्यक्रम रहता है ।

आषाढ़ बदी १ और कार्तिक बदी २ को मंदिर में 'काला' होता है, यानी एक मिट्टी की हंडी में दही और जुआर की खीलें भरकर उसे ऊंची जगह पर लटकाया जाता है और नीचे से उसे तोड़ देते हैं। इसमें से गिरनेवाला दही और खीलें प्रसाद के तौर पर लोग खाते हैं।

आषाढ़ और कार्तिक की एकादशियों को भगवान के दर्शन के लिए लाखों लोग 'पुंडलीक वरदा हरि विठ्ठल' के नारे लगाते हुए पंढरपुर में जमा होते हैं। इसमें ज्यादातर वे ही लोग होते हैं, जो बिला नागा इन एकादशियों को पंढरपुर आते हैं। कुछ लोग हर महीने की एकादशियों को भी पंढरपुर की यात्रा करते हैं। ऐसे लोगों को 'वारकरी' कहते हैं, जिनमें सभी जातियों के लोग होते हैं। कुछ दिन पहले हरिजनों को मंदिर में आने का अधिकार नहीं था। वे बाहर से ही दर्शन कर लेते थे, लेकिन यह अन्याय बर्दाश्त न होने से महाराष्ट्र के महान संत एवं नेता स्व० श्री पांडरंग सदाशिव साने (साने गुरूजी) ने कुछ साल पहले आमरण अनशन शुरू किया था, जिससे यह मंदिर हरिजनों के लिए खुल गया।

पंढरपुर के वारकरी ज्यादातर किसान ही होते

हैं। वे गले में तुलसी की मणियों की माला पहनते हैं और शराब-मांस को नहीं छूते। वे जब भगवान के भजन गाने में मस्त हो जाते हैं तो उनकी वह मस्ती देखते ही बनती है। कई वारकरी भजन-मंडलियां बनाकर पैदल आते हैं। इन मंडलियों को 'दिंडी' कहते हैं। सारे महाराष्ट्र में से ऐसी दिंडियां वहां आती हैं।

पंढरपुर से वापस जाते समय यात्री जो चीजें प्रसाद के तौर पर ले जाते हैं, उनमें बुक्का, कुंकुम, लाख की चुड़ियां तुलसी की मालाएं, जुवार और मकई की खीलें जरूर रहती हैं। बुक्का एक तरह की बुकनी होती है, जो अगरबत्ती की तरह काली और खुशबूदार होती है। पंढरपुर जानेवाले हर आदमी के माथे पर बुक्का लगा हुआ होता है। अपने-अपने घर पहुंचने पर लोग अपने पड़ौसियों और रिश्तेदारों वगैरह को ये चीजें बानगी के तौर पर भेंट देते हैं और वे लोग बड़ी श्रद्धा से उनको लेते हैं। यात्रा के दिनों में पंढरपुर शहर और उसके आसपास का इलाका 'ज्ञानोबा तुकाराम', 'विठोबा माउली, 'पुण्डलीक वरदा हरि विठ्ठल' आदि के नारों से और तुकाराम, ज्ञान-देव, एकनाथ, नामदेव, जनाबाई, चोखामेला आदि

संतों के भजनों से गूंज उठता है। लोग अपने घरेलू झंझटों एवं दुःखों को कुछ समय के लिए भूल जाते हैं।

: ३ :

आमतौर पर महाराष्ट्र में जितने भी विठ्ठल-मंदिर हैं, उनमें विठोबा के पास रखुमाई की भी मूर्ति उसी तरह कमर पर हाथ रखे हुए पाई जाती है और श्री विठ्ठल के चित्रों में भी उनकी बाईं तरफ रखु-माई रहती हैं। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि पंढरपुर में भी विठ्ठल के साथ रखुमाई होंगी। मगर ऐसी बात नहीं है। वहांपर अकेले विठ्ठल ही हैं।

इस संबंध में एक कहानी कही जाती है। एक बार रुक्मिणीदेवी दूसरी रानियों से रूठकर यहां दिंडीरबन में आ बैठीं। उन्हें खोजने के लिए भगवान श्रीकृष्ण स्वयं निकले। घूमते-घामते वह वहां पहुंच गये, जहां पुंडलीक अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था। भक्त को दर्शन और वर दिये बिना भगवान आगे कैसे बढ़ते? उस वर के कारण ही उनको पुंड-लीक की दी हुई ईंट पर खड़ा रहना पड़ा। यह ईंट रुक्मिणीदेवी के स्थान से कुछ दूरी पर पड़ी

थी। रुक्मिणीदेवी अपना हठ छोड़कर भगवान के पास जाने को तैयार न हुईं। इसलिए उन दोनों में अंतर बना रहा।
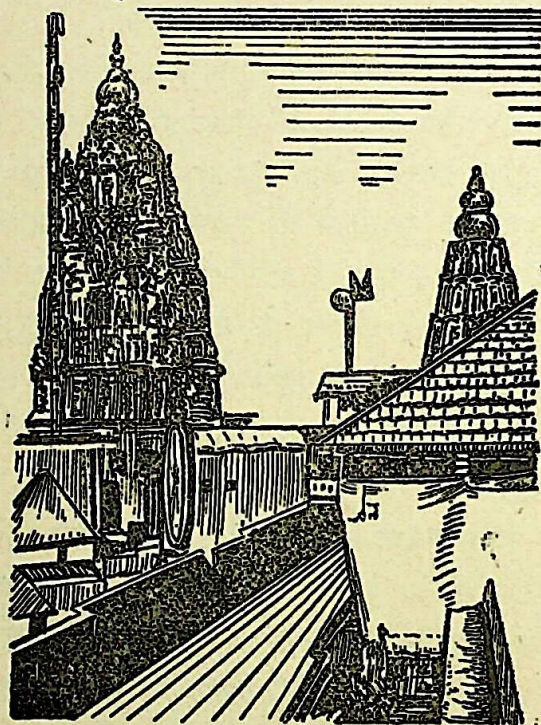
विठ्ठल और रखुमाई के मंदिर

आज भी विठ्ठल के मंदिर के पीछे उत्तर-पश्चिम कोने में रखुमाई यानी रुक्मिणी का मंदिर है। कुछ लोगों का ख़याल है कि 'रखुमाई' शब्द 'लक्ष्मी'

से बना है। जो हो, आज तो उनको रखुमाई रखुमा-बाई ही कहते हैं। उनका यह मंदिर भी बहुत बड़ा और शानदार है।

इस मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ जाने के बाद सामने की दीवार में एक शिलालेख दिखाई देता है। इसे 'चौ-यांशीचा लेख' यानी चौरासी का लेख कहते हैं। वास्तव में इस लेख में मंदिर के लिए दान देनेवाले चौरासी लोगों के नाम दर्ज किये हुए हैं और उनके दानों का वर्णन है। लेकिन लोगों में यह धारणा फैल गई कि इसका संबंध चौरासी लाख योनियों से है। अतः यह समझा जाता है कि इस पत्थर पर पीठ घिसने से चौरासी के चक्कर से आदमी मुक्त होता है। इस तरह लाखों-करोड़ों पीठें घिसने से उसपर का लेख मिटता जा रहा है।

सोलह खंभोंवाले मंडप के दक्षिणी दरवाजे को 'तरटी दरवाजा' कहते हैं। इसकी कहानी भी बड़ी मज़ेदार है।

श्री विठ्ठल की कान्हू नाम की एक पात्रा यानी दासी थी। वह 'कान्हू पात्रा' या 'कान्होपात्रा' नाम से मशहूर थी। वह पंढरपुर से नज़दीक मंगलवेढ़ें गांव में रहती थी। देवदासी होने की वजह से गाना-बजाना ही उसका काम था। वह बहुत ही रूपवती थी। उसके

रूप का बोलबाला सुनकर एक यवन बादशाह ने उसे पकड़ लाने के लिए अपने सैनिकों को भेजा।

जब वे सैनिक उसे पकड़कर ले चले तो उसको बहुत दुःख हुआ। रास्ते में श्री विठ्ठल का मंदिर पड़ता था। कान्होपात्रा का मन मीरा की तरह भगवान विठ्ठल के चरणों में समर्पित था। इसलिए बादशाह के पास जाकर अपने शरीर को भ्रष्ट होने देने के बजाय भगवान के सामने ही मर जाना उसे अधिक अच्छा लगा। इसलिए उसने सैनिकों से थोड़ी देर के लिए इजाजत ली और मंदिर में चली गई।

अंदर जाकर उसने भगवान विठ्ठल के चरण पकड़े और कहा, "हे मेरे प्रिय, तुम्हें छोड़कर मैं किसी भी पुरुष का स्पर्श बर्दाश्त नहीं कर सकती। बड़ी कृपा होगी, अगर तुम मुझे अपनेमें समा लो।"

अपने भक्त की बात को भगवान भला कैसे टाल सकते थे। उन्होंने झट उसे अपनी गोदी या जांघ में छिपा लिया। उसी समय वहां तरटी नाम का पेड़ उग आया। लोगों ने समझा कि आधुनिक पिंगला कान्होपात्रा ही उस पेड़ के रूप में जीवित हुई है। तब से वह पेड़ वहांपर खड़ा है। उसके नीचे कान्हो-पात्रा की छोटी-सी मूर्ति है। यात्री इस पेड़ की टह-

नियों की मालाएं गले में पहनते हैं और उसकी पत्तियां प्रसाद के रूप में ले जाते हैं।

सोलह खंभेवाले मंडप में पादुकाओं के दो जोड़े हैं। इनमें से एक जोड़े को 'गारेच्या पादुका' यानी 'चमक की खड़ाऊं' कहते हैं। इसकी कहानी इस प्रकार है। पुराने जमाने में मंगलवेढे में दामाजी पंत नाम का एक पटवारी रहता था। वह बड़ा ही भगवद्-भक्त और लोगों पर दया करनेवाला था। एक बार वहां बड़ा अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। यह देखकर दामाजी पंत ने अपनी जिम्मेवारी पर सारा सरकारी अनाज लोगों को लुटा दिया। जब बादशाह को इसकी खबर मिली तो उसे बड़ा गुस्सा आया और उसने दामाजी पंत को पकड़कर कैद में डाल दिया।

इधर अपने भक्त की यह हालत भगवान विठ्ठल महाराज से नहीं देखी गई और वे महार यानी अछूत का भेस बनाकर बादशाह के पास गए और उन्होंने उस सारे अनाज की कीमत चुका दी। बादशाह को लाचार होकर दामाजी पंत को छोड़ देना पड़ा।

उस घटना की याद के रूप में ये खड़ाऊं बरसों से वहां रखी हुई हैं।

इस तरह कई छोटे-मोटे मंदिर और दूसरी चीजें इस

मंदिर के आसपास मौजूद हैं। उनमें से हरएक के सामने यात्री को कुछ-न-कुछ पैसे जरूर डालने पड़ते हैं, क्योंकि न डालें तो वहां के पंडे सताते हैं।

: ४ :

दूसरी जगहों की तरह पंढरपुर में भी मुख्य मंदिर के अलावा और कई मंदिर हैं। इनमें पंचमुखी, मारुति, भुलेश्वर, पद्मावती, लखूबाई, व्यास, अम्बाबाई, यमाई व ज्योतिबा, नगरेश्वर, त्र्यंबकेश्वर, ताकपिठ्या विठोबा, काटेश्वर, श्रीराम, कालभैरव, गजपति, शाकंभरी, मल्लि-कार्जुन, मुरलीधर, दत्त, काला मारुति, लाल मारुति, अमृतेश्वर, महादेव वगैरह महत्व के हैं। मराठी संत नामदेव महाराज का मंदिर बड़ा विशाल, स्वच्छ और मनोहारी है। यह मंदिर उसी स्थान पर बनाया गया है, जहांपर श्री नामदेव रहते थे। दत्त-घाट पर छः हाथ और एक सिखाली जो दत्त की मूर्ति है, बड़ी ही सुंदर है। एकनाथ महाराज के परदादा श्री भानु-दास विजयनगर के राजा के यहां श्री विठ्ठल की मूर्ति वापस लाने के लिए चल पड़े तो उन्होंने काले हनु-मान की मूर्ति की स्थापना की थी, इसलिए वारकरी लोग इसे बहुत पवित्र मानते हैं। जब भजन-मंडलियां

इसके सामने से निकलती हैं तो इस मंदिर के सामने एक-दो अभंग (भजन) कहे बगैर आगे नहीं बढ़तीं।

पुंडलीक के मंदिर से दक्षिण में लगभग पौन मील की दूरी पर विष्णुपद का मंदिर है। यह नदी में ही है। यहांतक जाने के लिए नौकाएं हमेशा तैयार मिलती हैं और पैदल भी जाया जा सकता है। यह विष्णुपद गया के विष्णुपद का छोटा नमूना है। वहां पर गाय के पैर, वह पत्थर का कटोरा जिसमें श्रीकृष्ण ने भोजन किया था, आदि चीजें हैं। इस विष्णुपद पर प्रितरों के लिए पिंडदान करके कई लोग गयाश्राद्ध का पुण्य प्राप्त करते हैं। यह मंदिर सन् १६४० ईसवी का बना है। इसका दृश्य बड़ा सुहावना है।

पंढरपुर से दक्षिण में लगभग एक मील की दूरी पर गोपालपुर है। यहां एक छोटी-सी अलग बस्ती है। श्रीगोपालकृष्ण का मंदिर है। यह मंदिर देखने योग्य है, क्योंकि इसकी रचना जमीन पर के किले की तरह है। आषाढ़ और कार्तिक की पूर्णिमा के दिन 'गोपाल-काला' होता है। उस समय सारे यात्री यहां आ जाते हैं। इस 'काला' का प्रसाद यानी दही लिये बिना कोई भी वारकरी पंढरपुर नहीं छोड़ता।

गोपालकृष्ण के पीछे उनके ससुर भीमक महाराज

अपनी बेटी के साथ खड़े हैं। श्री रुक्मिणी का गुस्सा खत्म होने पर श्रीहरि से उनकी भेंट यहींपर हुई थी। यहांपर यशोदा माता की ऊखली, मूसल, चक्की, वगैरह चीजें देखने को मिलती हैं। इन चीजों के पास पंडे बैठे रहते हैं और यात्रियों से पैसा-दो-पैसा लेकर उनको पुष्प एवं आशीर्वाद देते हैं।

यहां से पास ही महाराष्ट्र की मीरा 'जनाबाई' का मंदिर है, जो जमीन के अंदर गुफा की सूरत में है। यहां उसका रसोईघर, खटिया, गुदड़ी वगैरह चीजें दिखाई जाती हैं।

इस तरह और भी कई छोटे-मोटे स्थान यहांपर हैं। पर श्री विठ्ठल का मंदिर ही यहां का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। श्री विठ्ठल भगवान के दर्शनों के लिए सैकड़ों मील की दूरी से लोग आते हैं, घंटों बारी लगाकर खड़े रहते हैं और दर्शन पाकर धन्य होते हैं।